वैदिक व्याख्यान माला - तृतीय व्याख्यान

लोक प्रमाणीकरण १९८४-१९८५

अपना स्वराज्य

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम', किल्ला-पारडी, जि. सूरत

COMPILED

मूल्य छः आने

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

मैं कौन हूं ?

'मैं कौन हूं ?' मेरी योग्यता कितनी है ? मेरा शरीर कैसा है ? मेरे शरीरके साथ मेरा क्या संबंध है ? इत्यादि अनेक प्रश्न वारंवार मनुष्यको सताते हैं। इनका उत्तर वैदिक दृष्टिकोणसे इस व्याख्यानमें देनेका यत्न किया है। आशा है कि पाठकोंको इस व्याख्यानमें इन प्रश्नोंका उचित उत्तर मिलेगा।

अपने शरीरपर मेरा प्रभुत्व है, इस शरीरपर मेरा अनुशासन चलना है, दूसरेका नहीं। इस शासनव्यवस्थाको वेदमें **'स्वराज्य'** कहा है। इसलिये इस व्याख्यानका नाम **'अपना स्वराज्य'** रखा है। यह शरीरही अपना स्वराज्य है। इसका शासक-अध्यक्ष-मैं हूं। मैं जो चाहूंगा वही यहां बनेगा और जो मैं न चाहूंगा, वह यहां बनेगाही नहीं। पूर्ण संयम तथा पूर्ण निग्रहपूर्वक अपने शरीरको मैं सुपथसे चलाऊंगा और पुरुषोंमें पुरुषोत्तम बनूंगा। पुरुषोंमें उत्तम पुरुष बनना ही मेरे सामने ध्येय है।

जनतामेंसे प्रत्येक मनुष्य इस तरह स्वयं अनुशासनमें रहनेवाला, ज्ञानविज्ञानसंपन्न, कर्ममें कुशल, स्वभावसे संयमी और सब दृष्टीसे उत्तम पुरुष बने और ऐसे उत्तम पुरुषोंके द्वाराही स्वराज्यशासन राष्ट्रमें चलाया जाय। यही स्वराज्य वेदका स्वराज्य है। यही भूमिपर स्वर्गका सुख मनुष्यमात्रको देगा इसमें संदेह नहीं है। इसीके लिये सबके प्रयत्न होने चाहिये।

स्वाध्याय-मण्डल
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)
१।१।५२

लेखक

वैदिक व्याख्यान माला ।
तृतीय व्याख्यान ।

ॐ

15.3,31(3)
27615

अपना स्वराज्य

अपना स्वराज्य हम सबको प्राप्त है। दरिद्रीसे दरिद्री भी क्यों न हो, अथवा धनपतिसे बडा धनपति भी क्यों न हो, इन दोनोंको यह स्वराज्य समानतया जन्मसे ही प्राप्त है। इस अपने स्वराज्य पर हम अपना शासन चलावें, अथवा अपने राज्यको शत्रुके स्वाधीन करें, यह प्रत्येकका अधिकार है । यह प्रत्येककी इच्छा है ।

यह अपना स्वराज्य कहां है ? उत्तरमें कह सकते हैं कि यह अपना स्वराज्य इस अपने शरीरमें ही है। दूर किसी भी स्थानपर जानेकी आवश्यकता नहीं है। यह अपना जन्मके साथ प्राप्त शरीर ही अपना स्वराज्य है। यहांका राजा ' आत्मा ' है, इसका शासन यहां चलना चाहिये ।

बलवानका अधिकार

शासन तो बलवानका चलता है। निर्बलका शासन कोई नहीं मानता। ' ईशा वास्यं इदं सर्व ' (यजु० ४०।१) जो ईशन शक्तिसे युक्त है, उसीका इस विश्वपर शासन होगा। निर्बलका नहीं होगा। इसलिये इस शरीर पर अपना शासन चलाना है, तो प्रथम अपने अन्दर बल प्राप्त करना चाहिये। बलसे ही सब विश्व खडा है। देखिये--

शतं विज्ञानवतां एको बलवान् आकम्पयते, स यदा बली भवति, अथ उत्थाता भवति, उत्तिष्ठन् परिचरिता भवति, परिचरन् उपसत्ता भवति, उपसीदन् द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बोद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति, बलेन वै पृथिवी तिष्ठति, बलेन अन्तरिक्षं, बलेन द्यौः, बलेन पर्वता, बलेन देवमनुष्या, बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं बलेन लोकस्तिष्ठति, बलमुपास्व इति । छां० उ० ७।८।१

' बल विज्ञानसे श्रेष्ठ है, अकेला बलवान् मनुष्य सैकडों विज्ञानी मनुष्योंको कंपित करता है- डराता है। वह जब बलवान् होता है तब वह उठता है, जब उठता है तब वह सेवा करने लगता है, जो जनसेवा करता है वह जनप्रिय होता है, वही देखनेवाला, श्रोता, मननकर्ता, ज्ञाता होता है। बलसे यह पृथिवी स्थिर रहती है, बलसे अन्तरिक्ष, बलसे द्युलोक, बलसे ये पर्वत स्थिर रहे हैं। बलसे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, घास, वनस्पतियाँ, कृमिकीट, चीटियाँ, पतंग ये सब स्थिर रहते हैं। बलसे सब लोक स्थिर रहते हैं, इसलिये बलकी उपासना करो। ' विना बलके इस जगत्में कुछ भी नहीं होता। इसलिये बल प्राप्त करना चाहिये ।

अपने शरीरके अन्दरका राज्य हो अथवा बाहरका राज्य, साम्राज्य हो, बलसे ही वह चलाया जा सकता है। निर्बलसे इस जगत्में कुछ भी नहीं होता। निर्बलको तो सब दबाते हैं। इस जगत्में निर्बलके लिये कोई आशा नहीं है। इसलिये पर्याप्त बल प्राप्त करना चाहिये । पर्याप्त सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये। बलसे ही स्वराज्य शासन चलाया जा सकता है।

सम्राट् और अधिकारी

यह शरीर अपना स्वराज्य है। इस राज्यमें किस तरह अधिकारियोंकी नियुक्ती की जाती है, इस विषयमें उपनिषदोंमें बडा अच्छा वर्णन है--

यथा सम्राट् एव अधिकृतान् विनियुंक्ते, एतान् ग्रामान्, एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व, इति । एवमेव एष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक्पृथ-

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

नेव सन्निधत्ते ॥ ४ ॥ पायूपस्थेऽपानं, चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते, मध्ये तु समानः। प्रश्न० उ० ३।४-५

'जिस तरह सम्राट् स्वयं अधिकारी राजपुरुषोंको कहता है कि तू इन ग्रामोंपर और तू इन ग्रामोंपर अधिकार चलाओ, इसी तरह यह मुख्य प्राण अन्य प्राणोंको पृथक् पृथक् स्थानोंपर नियुक्त करता है, मलमूत्र स्थानोंमें अपानको, मुख-नासिका-नेत्र-कर्ण इन स्थानोंपर मुख्य प्राण स्वयं रहता है, और मध्यमें समान प्राण रहता है।'

इस तरह सम्राट्के अधिकारियोंकी नियुक्ति करनेकी उपमा प्राणोंकी यथास्थान नियुक्ति करनेके लिये दी है। यह उपमा ऐसी भी हो सकती है कि, जिस तरह मुख्य प्राण अन्य प्राणों और उपप्राणोंको शरीरके भिन्न भिन्न विभागोंपर नियुक्त करता है, उस तरह सम्राट् अपने प्रान्ताधिकारियोंको पृथक् पृथक् प्रान्तोंपर नियुक्त करता है। इसका अर्थ यह है कि जैसा भूमिपर किसी सम्राट्का साम्राज्य होता है और उसके प्रान्ताधिकारी तथा नगराधिकारी होते हैं, ठीक इस तरह शरीरका सम्राट् आत्मा शरीरके नाना विभागोंपर अपने अधिकारियोंको नियुक्त करता है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि जैसा इस शरीरका सम्राट् अपने अधिकारियोंको अपने शरीरके विभागोंपर नियुक्त करता है, वैसा सम्राट् अपने अधिकारियोंको अपने साम्राज्यके प्रान्तोंपर नियुक्त करता है। शरीरमें जैसा साम्राज्य है, वैसाही भूमिपर भी है, और जैसा साम्राज्य भूमिपर होता है वैसा ही शरीरमें भी है। शरीरका साम्राज्य छोटा और पृथ्वी परका साम्राज्य विस्तृत है। छोटा और विस्तृत इतना इनमें भेद है, परंतु बाकी व्यवस्थामें दोनों साम्राज्य समान ही हैं।

राष्ट्रकी तालिका

शरीरमें	साम्राज्यमें
१ ३३ करोड अणुजीव रहते हैं।	१ ३३ करोड मनुष्य रहते हैं।
२ प्रत्येक अणुजीव स्वतंत्र रीतिसे जन्मता, रहता और मरता है।	२ प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र रीतिसे जन्मता, रहता और मरता है।
३ शरीरमें इंद्रिय और अवयव अनेक होते हैं।	३ राष्ट्रमें प्रान्त और प्रविभाग अनेक होते हैं।
४ प्रत्येक इंद्रिय और अवयवका अधिष्ठाता भिन्न भिन्न होता है।	४ प्रत्येक प्रांतपर एक अधिकारी भिन्न भिन्न होता है।
५ शरीरमें इंद्रियां भोग करनेवाली और प्राण भोग न करनेवाले हैं।	५ राष्ट्रमें वैतनिक सेवक और अवैतनिक स्वयंसेवक होते हैं।
६ शरीर शासक आत्मा है।	६ राष्ट्रशासक सम्राट् है।

इस तरह शरीर और राष्ट्रमें शासनव्यवस्थाकी समता है। ऋषियोंने यह प्रत्यक्ष देखी और उसकी तुलना की और दोनोंके साम्यका वर्णन किया। ये ही सामान्य नियम स्थायी स्वयंभू और सुखदायी हैं।

३३ कोटी प्रजाजन

इस शरीरके अवयवोंका वर्णन अब हम करते हैं। शरीरमें ३३ कोटी अणुजीव हैं। ये शरीरके नाना प्रान्त-विभागोंमें रहते हैं। १ नासिकाविभाग, २ जिह्वा विभाग ३ नेत्र विभाग, ४ त्वचा विभाग, ५ कर्ण विभाग ये पांच विभाग ज्ञानियोंके प्रान्तोंके हैं। अब श्रमजीवियोंके प्रान्तोंके विभाग देखिये- हाथ, पांव, मुख, गुदा और शिश्न ये पांच विभाग श्रमजीवियोंके क्षेत्रोंमें हैं। इसके अतिरिक्त प्राण विभागके पांच मुख्य प्राण और पांच उप प्राण मिलकर दस विभाग होते हैं। मुख्य प्राणका प्रान्त

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

15.3,31(3)
27615
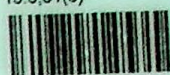
छाती और उसके ऊपरका प्रदेश है, अपान नाभी के नीचले प्रदेशमें रहता है, व्यान सब शरीरमें संचार करता है, उदान ऊर्ध्व गतिसे संचार करता है, समान उदरके स्थानमें रहकर खाये अन्नका रस करता है । पांच उपप्राणोंके क्षेत्र भी ऐसे ही इस शरीरमें हैं ।

इनके अतिरिक्त मस्तिष्क, पृष्ठवंश, दो फेंफडे, हृदय, यकृत्, प्लीहा, दो मूत्राशय, पेट, मलाशय ये मुख्य प्रान्त हैं, तथा मन बुद्धि मिलकर तेरह प्रान्त हुए । पांच ज्ञानके इंद्रिय, पांच कर्मके इन्द्रिय, पांच मुख्य प्राण, पांच उपप्राण, ये बीस हैं और ऊपर गिनाये तेरह प्रान्त, सब मिलकर ३३ प्रान्त हुए । इन सबका मुख्य अधिष्ठाता आत्मा है । आत्मा सबमें मुख्य और अन्य ३३ अधिकारी गौण हैं । इस तरह यह आत्माका स्वराज्य अपने शरीरमें है । आत्मा यहां राज्य करता है । इनमेंसे प्रत्येक प्रांतपर एक एक अधिकारी रहता है जो वहांका व्यवहार देखता है ।

वैतनिक सेवक

जिस तरह राज्यशासनमें अनेक वैतनिक अधिकारी होते हैं, प्रान्ताधिकारी, विभागाधिकारी, ग्रामाधिकारी, आरक्षक, सैनिक इस तरह यहां शरीरमें भी पूर्वोक्त प्रान्तोंके एक एक अधिकारी है, उसके सहायक अधिकारी भी वहां उसकी सहायता करते हैं । ये सब वैतनिक सेवक हैं । ये भोगरूप वेतन लेते हैं । इनमेंसे प्रत्येकका भोगक्षेत्र पृथक् पृथक् है । शरीर जो अन्न खाता है, उसका रस इनके पोषण के लिये इनको मिलता है । यथा प्रमाण वह रस ये लेते हैं । इसके अतिरिक्त भी इनको भोग मिलता है ।

नासिका पृथ्वीसे गन्ध लेती है । सुगंध लेकर यह नासाधिकारी संतुष्ट होता है, दुर्गंध आगया तो संतप्त होता है । सुगंध जितना चाहे इसके कार्यालयमें आवे, वह इसका भोग करेगा, पर थोडासा दुर्गन्ध आया तो यह क्रोधी होगा । इस तरहका यह भोगी अधिकारी है । दूसरा ओहदेदार रसनाधीश है, जिह्वा इसका कार्यालय है । इसको मीठे स्वादु पदार्थ भोगके लिये चाहिये, कई यहां ऐसे भी रहते हैं कि वे तिक्त, खट्टा आदि रस पसंद करते हैं । रस छेः हैं, इनमेंसे इसको जो जैसा रस चाहिये वह मिला तो यह संतुष्ट रहता है, वह न मिला तो यह बिगड बैठता है । इस तरह छः रस इसके भोगका क्षेत्र है । इसमें यह विहार करता है ।

तीसरा यहांका अधिकारी नयन-वीर है । इसका क्षेत्र आंख है । इसको सुन्दर रूप प्रिय है । जितनी सुंदरता है उसमें यह रमता है और कुरूप वस्तु सामने आगयी तो यह क्रोधी हो जाता है । सौंदर्यसे लुब्ध होनेवाला यह अधिकारी है । चौथा त्वचाका अधिकारी है । इसको मृदु कोमल स्पर्श चाहिये । इससे यह प्रसन्न होता है । किसी समय इसके पास कठोर स्पर्शकी वस्तु आगयी, तो यह क्रोध करने लगता है । पांचवा अधिकारी कर्ण है । यह बडा वीर है, परंतु यह वीर मीठे स्वरसे प्रसन्न होता है और कर्कश कठोर स्वरसे अप्रसन्न होता है । मधुर गायन हुआ तो उसमें यह रमेगा, परंतु कर्णकठोर शब्द आने लगा तो यह बडा अप्रसन्न हो जाता है ।

इस राज्यके ये अधिकारी ऐसे भोगी हैं, ऐष आराम करनेवाले हैं, वेतन लेकर ये कार्य करते हैं । वेतन न मिला, भोग न मिले, तो ये अप्रसन्न होते हैं और हडताल भी करते हैं और कार्य करना बंद भी कर देते हैं !! अपने भोगों पर इनकी दृष्टी सदा टिकी रहती है, संपूर्ण शरीररूपी राष्ट्रका क्या होगा, उसका कल्याण होगा या नहीं, हमने कार्य करना छोड दिया, तो इस अखण्ड शरीररूप राष्ट्रका क्या होगा, इस बातकी इनको पर्वाह नहीं है । मेरे लिये भोग चाहिये, वे पर्याप्त मुझे मिलने चाहिये । शेष राष्ट्रका जो चाहे सो बने, इसका विचार ये कभी करते नहीं ।

भोगी अधिकारी

अनेक वार ये अड जाते हैं, कार्य करना छोड देते हैं, हडताल करते हैं । इसीका नाम रोग है । आंखमें मोतीया होता है, नाकसे गंध लेनेका कार्य बंद हो जाता है, कान शब्दोंका श्रवण नहीं करते, इस तरह इनके सत्याग्रह वारंवार शुरू होते हैं और इस कारण इनके झगडे मिटाते मिटाते राजा आत्माराम बडे कष्टोंका अनुभव करता है । सब संघका हित देखना चाहिये, अपने ही वैयक्तिक भोगलालसामें फंसना नहीं चाहिये, इस तत्त्वज्ञानका उपदेश सुननेपर भी ये स्वार्थी वैतनिक सेवक उपदेश न सुननेके समान बर्ताव करते हैं । वेतनपर ही

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

दृष्टी रखनेवाले और अपने कर्तव्यका विचार न करनेवाले अधिकारियोंसे ऐसा ही क्लेश होना स्वाभाविक है। भोगी अधिकारी ऐसा ही करेंगे।

ये कभी कभी शत्रुके अधीन भी हो जाते हैं। अपने क्षेत्रका संरक्षण ये ठीक तरह नहीं करते, वहां शत्रु आक्रमण करता है, उस प्रांतका अधिकार अपने अधीन करके शत्रु बैठ जाता है। ऐसी विपत्ति कभी कभी इन वैतनिक, सुखलुब्ध, स्वार्थी सेवकोंके कारण इस शरीररूपी राष्ट्र पर आजाती है। फिर बडे प्रयत्नसे उस शत्रुको हटानेका प्रयत्न करना पडता है। इसीको रोग और चिकित्सा कहते हैं।

अवैतनिक स्वयंसेवक

इस देहरूपी राष्ट्रके वैतनिक सेवकोंकी वृत्ति जैसी ऊपर बतायी है वैसी है। परंतु इस शरीररूपी राष्ट्रमें अवैतनिक स्वयंसेवक भी रहते हैं। वे प्रारंभसे अन्ततक अपना कार्य अवैतनिक सेवा करनेके उच्च आदर्शसे करते रहते हैं। राष्ट्रका उच्च जीवन इन स्वयं सेवकोंकी सेवापर निर्भर रहता है। इन अवैतनिक स्वयंसेवकोंका संचार शरीररूपी संपूर्ण राष्ट्रमें होता रहता है। ये कुछ भी वेतन लेते नहीं, विश्राम लेते नहीं, भोग भोगते नहीं, खाते नहीं, परंतु दिन रात शरीररूपी राष्ट्रकी अवैतनिक सेवा करते रहते हैं। जन्मसे मृत्युपर्यंत इनकी अवैतनिक सेवा चलती रहती है, क्षण भर भी इनको विश्राम नहीं मिलता।

आंख, नाक, कान, आदि जो वैतनिक सेवक हैं वे भोग भोगते, खाते पीते, विश्राम करते, ऐष आराममें मस्त रहते हैं। पर ये प्राणरूप अवैतनिक स्वयंसेवक दिन रात न थकते, न विश्राम लेते, लगातार सेवाके कार्यमें लगे रहते हैं। मृत्युके समयके पूर्व ही आंख, नाक, कान, आदि वैतनिक सेवक अपना कार्य बंद करके चुप बैठ जाते हैं, परंतु ये प्राणरूपी सब स्वयंसेवक मृत्युके अन्तिम क्षणतक, जीनेकी संपूर्ण आशा छूट जानेपर भी सेवा करते ही रहते हैं। ऐसे ये अवैतनिक स्वयंसेवक हैं, इसलिये यह शरीररूपी राष्ट्र विपत्तियां आनेपर भी जीवित रहता है। यदि इसका जीवन ज्ञान-कर्मके इंद्रियोंपर ही निर्भर रहेगा, तो यह शरीररूपी राष्ट्र जीवन युक्त रहेगा ही नहीं। प[र] इन प्राणरूपी अवैतनिक स्वयंसेवकों पर इस शरीररू[पी] राष्ट्रका जीवन निर्भर रहता है और ये आलस्य छोडक[र] सेवाभावसे कार्य करते रहते हैं, इसलिये यह शरीररू[पी] राष्ट्र उत्साहमय रहता है।

वैतनिक और अवैतनिकोंका झगडा

आंख नाक कान, इन वैतनिक सेवकोंका प्राणरूपी स्व[यं]सेवकोंके साथ एक वार झगडा हुआ। प्राण कहता था [कि] मेरी सेवाके कारण यह शरीर जीवित रहता है, ज्ञान क[र्म] इंद्रियां इसको माननेसे इनकार करने लगी और कहने लगीं कि हमारी सेवासे ही यह शरीर जीवित रहता है। इस तरह इन्द्रियों और प्राणोंमें बडा झगडा हो गया। उसका वर्णन देखिये—

> ते प्रकाश्य अभिवदन्ति वयं एतद्बाणं अवष्टभ्य विधारयामः ॥ १ ॥ तान् वरिष्ठः प्राण उवाच, मा मोहं आपद्यथ, अहं एव एतत् पञ्चधा आत्मानं प्रविभज्य एतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति। ते अश्रद्दधाना बभूवुः ॥ ३ ॥ सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमते इव। तस्मिन्नुत्क्रामति अथ इतरे सर्व एव उत्क्रामन्ते। तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानं उत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्ते एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रीताः प्राणं स्तुवन्ति ॥ ४ ॥ प्रश्न० उ० २

प्राण और इन्द्रियोंके झगडेका वृत्त ऐसा है -

इन्द्रियाँ कहने लगीं-हम सब मिलकर इस शरीरको सुदृढ करके धारण करती हैं।

प्राण बोला— हे इन्द्रियो ! तुम ऐसे भ्रममें न फंसो। तुम्हारे अन्दर इस शरीरको दृढ करके धारण करनेकी शक्ति नहीं है। यह कार्य मेरा है। मैं अपने आपको पांच विभागोंमें (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समानमें) विभक्त करके और पांच स्थानोंमें रहकर इस शरीरको सुदृढ करके धारण करता हूं। तुम्हारे अन्दर भी मैं ही जीवन रखता हूं।

इन्द्रियां— इसपर हमारा विश्वास नहीं बैठता। क्योंकि

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

देखना सुनना चखना आदि सब कार्य हम ही करते हैं, जिससे इस शरीरकी धारणा हो रही है। यह प्रत्यक्ष है। तुम तो यहां हमारे जैसा कुछ भी उपयोगी कार्य नहीं करते। इसलिये हम ही इस शरीरका धारण कर रहे हैं यह सिद्ध होता है।

प्राण— यह तुम्हारी कल्पना असत्य है। यदि मेरी शक्ति तुम्हें न मिली, तो तुमसे कुछ भी कार्य नहीं होगा, इसलिये सब बल मेरा है, तुम्हारा नहीं।

इंद्रियां— ऐसा तो हम नहीं मान सकते। प्रत्यक्षके विरुद्ध कौन कैसा मान सकता है?

प्राण— मेरी शक्ति तुमको देखनी है?

इंद्रियां— हां, दिखाओ, तुम्हारी शक्ति कहां है?

प्राण— देखो, मैं अब इस शरीरको छोड देता हूं, देखो, मेरे जानेसे क्या बनता है।

इंद्रियां- हां, चले जाओ, हम यहां रहकर यहांका कार्य चलायेंगे।

ऐसा इतना झगडा होनेपर प्राण इस शरीरको छोडनेकी तैयारी करने लगा। वह प्राण थोडासा ऊपर उठा, शरीर छोडने जैसा करने लगा, तो चमत्कार यह हुआ, कि सभी इन्द्रियां उस प्राणके साथ ही अपने स्थानसे उखड जाने लगीं! सब इंद्रियोंमें घबराहट उत्पन्न हुई। किसीको भी प्राणके विना हम रहेंगे और कार्य करेंगे ऐसा विश्वास नहीं रहा। सब इंद्रियां अपनी निर्बलता मालूम करने लगी! तब उनकी घबराहट देखकर प्राण उनको कहने लगा-

प्राण- क्या मैं इस शरीरको पूर्णतया छोड दूं? मेरे जानेपर आप यहांका कार्य संभालेंगे?

इन्द्रियाँ- नहीं, नहीं, महाराज! आपके विना हमारा यहां रहना भी अशक्य है, कार्य करना तो दूर ही है। महाराज! आपकी शक्तिसे ही हम सब कार्य कर रहे हैं। आप ही हम सबमें श्रेष्ठ वरिष्ट और हम सबके आधार हैं। हम आपके ही आश्रयमें रहकर कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। हम अपनी शक्तिसे कुछ भी नहीं कर सकते। यह सब आपहीकी महिमा है।

प्राण- अब तुम्हारे ध्यानमें सत्य बात आगयी यह ठीक हुआ। अब यही ध्यानमें रखो।

यह झगडेका वृत्त तो काल्पनिक है। यहां इतना ही बताना है कि प्राण-जिनको हमने अवैतनिक स्वयं सेवक कहा वे मुख्य हैं, उनकी शक्तिसे शरीरकी सब इंद्रियां अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ होती हैं। इन इन्द्रियोंको हमने वैतनिक सेवक कहा है।

राष्ट्रके शासनमें इससे यह बोध मिलता है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक जो कि राष्ट्रकी अवैतनिक सेवा केवल सेवा भावसे, अपना कर्तव्य समझ कर करते हैं, राष्ट्रमें वे श्रेष्ठ हैं और जो वैतनिक सेवक हैं, जो आराम विश्राम करते हुए, भोग भोगते हुए, वेतन पर ध्यान करते हुए अपना कार्य करते हैं, उनकी सेवा उन स्वयंसेवकोंसे कम महत्त्वकी है। वेतन मिला तो ही वे सेवा करेंगे, परंतु ये स्वयंसेवक ऐसे हैं कि जो केवल कर्तव्य बुद्धिसे ही कार्य करते हैं। राष्ट्रीय शासन क्षेत्रमें यह बोध यहां मिलता है, जो महत्त्व पूर्ण है।

प्रान्त और अधिकारी

शरीररूपी राष्ट्रमें पूर्वस्थानमें बताया ही है कि यहां ३३ प्रात हैं, प्रत्येक प्रांत पर एक एक अधिकारी है, और उस प्रांतमें एक एक कोटी अणुजीव रहते हैं जो उस क्षेत्रके रहनेवाले हैं। वे वहांका नियत कार्य करते रहते हैं।

इन प्रान्ताधिकारियोंके नीचे छोटे छोटे अधिकारी कार्य करनेवाले अनंत कार्यकर्ता होते हैं। प्रत्येक स्थानपर एक अधिष्ठाता और अनेक कार्यकर्ता होते हैं और इस देह रूपी विशाल राष्ट्रका सब कार्य इनके द्वारा चलता है। इन सबमें प्राणकी शक्ति जाकर सबको उत्साहित करती रहती है। इसका नाम 'वीरभद्र' है अथवा 'भद्र वीर' कहिये। कल्याण करनेवाला यह वीर है। यह बडा शक्तिवाला है और इसके नीचे दस प्राण उपप्राण मिलकर उक्त प्रान्तोंमें स्वयं सेवकोंका कार्य करते हैं।

प्रान्ताधिकारी ३३ हैं, उनका मुख्य अधिष्ठाता मन है। मनकी देखरेख रही तो ही ये प्रान्ताधिकारी अपने अपने प्रान्तका कार्य करते रहते हैं। मन देखनेके लिये न रहा तो ये वैतनिक सेवक अपना कार्य छोडकर आलस्यमें समय बितायेंगे। कार्य करने न करनेकी इनको पर्वा नहीं है। काम कम करना पडे, भोग अधिक मिले, विश्राम अधिक मिले, ऐसा इनका सदा विचार रहता है। इसलिये मनको इनके पीछे पड पडकर इनसे काम लेना पडता है। इस-

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

लिये बिचारे मनको एक क्षणकी भी फुरसत नहीं। यह बिचारा इधरसे उधर, उधरसे इधर घूमता और दौड लगाता रहता है, और इंद्रियोंसे काम लेता रहता है। इस मनकी इस प्राणके साथ घनिष्ठ मित्रता है।

प्राण और मन

प्राण चलने लगा तो मन चलने लगता है और प्राण स्तब्ध रहा तो मन स्तब्ध रहता है। इसलिये प्राणायामसे मन स्थिर और शान्त करनेकी विधि योगियोंने सिद्ध की और वह उपयोगी सिद्ध हुई है। इससे कैसा लाभ होता है यह देखिये। प्राणायामसे प्राणका बल बढाया जाता है, इससे मन बलवान हो जाता है। मन बलवान हुआ तो मनके आधीन ३३ प्रान्ताधिकारी रहते हैं, वे मनके निरीक्षणमें ही कार्य करते हैं। इसलिये जो विचार मनमें रहेगा, वैसा कार्य शरीरके विभागोंमें हो सकता है अथवा किया जा सकता है। यह नियम इतना निश्चित है कि इसमें भूल नहीं होती।

किसी इन्द्रिय और अवयवमें कुछ विकार या रोगका प्रादुर्भाव हुआ, तो प्राणके आश्रयसे रहनेवाले मनको तदनुकूल प्रेरणा दी जाय। मन वैसा हेरफेर वहां करने लगता है और इष्ट परिणाम वहां होता है। इससे वहांका रोग दूर होगा और वहांका आरोग्य स्थिर रहेगा। शरीरके प्रत्येक इन्द्रिय और अवयवमें यह मन इस तरह इष्ट परिणाम करता है। और यदि मनमें बुरे विचार रहे, तो अनिष्ट परिणाम भी यही मन करता है। इसलिये मनको सुविचारमय करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। '**मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः**'–मन ही मनुष्योंके बंध और मोक्षका मुख्य कारण है ऐसा जो कहा है वह नितान्त सत्य है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्-
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ ६५॥
वा० यजु० ३४

'जिस तरह उत्तम सारथी रथके घोडोंको उत्तम मार्गपर चलाता है, उस तरह हृदयमें रहनेवाला यह जरारहित, सदा तरुण जैसा रहनेवाला यह मन इस शरीरको चलाता है वह शुभसंकल्पयुक्त हो।' मन शुभसंकल्पयुक्त करनेका उपदेश यहां है वह इसलिये है कि, इस मनने शुभसंकल्प किये तो मनका तथा संपूर्ण मानवका हित होता है और अशुभ संकल्प किये तो सबका अधःपतन होता है।

मन सब इंद्रियोंका स्वामी है, अधिपति और ईश है। सब इंद्रियाँ मनके आधीन हैं। इसलिये मनके विचार परिशुद्ध चाहिये, मनमें शुभ विचार ही रहने चाहिये। मनके विषयमें और कहा है–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ १ ॥ वा० य; ३४

जागनेवाले मनुष्यका मन दूर दूर जाता है, और सुप्त अवस्थामें भी वैसा ही जाता है, यह दैवी शक्तिसे युक्त मन दूर दूर जानेवाला, ज्योतियोंका ज्योति जैसा तेजस्वी है, वह मेरा मन शुभ संकल्प करनेवाला हो।' तथा

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ ४॥ वा० य० ३४

'जो प्रज्ञावान्, चेतना देनेवाला और धैर्यवान् है, जो ज्योतिरूप अमृत जैसा तेज प्रजाजनोंमें रखता है, जिसके विना कुछ भी कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।'

इस मनकी सहायताके विना कुछ भी कर्म नहीं किया जा सकता, वह मन शुभसंकल्प करनेवाला हो। इस शरीररूपी राष्ट्रमें राजा 'आत्मा' है, बुद्धि उस आत्माकी सहधर्मचारिणी तथा संमति देनेवाली है, मन उसका मंत्री है, सब इंद्रियां उसके विविध प्रांतोंके अधिकारी हैं, सब प्राण उसके राष्ट्रमें स्वयंसेवक हैं। इस राष्ट्रमें करोडों अणुजीव हैं। यहां यह राज्यप्रबंध कैसा है यह जानना चाहिये और अपने आत्माका शासन यहां चलता है यह देखना और अनुभव करना चाहिये।

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

संकल्पका परिणाम

" मैं आत्मा हूं। मैं इस शरीररूपी राज्यका शासक हूं। यह मेरा स्वराज्य है और मैं इस स्वराज्यका शासक 'स्वराट्' हूं। मैं जो अनुशासन चलाऊंगा वही यहां विधान चलेगा। इस राज्यके दिव्य स्वयंसेवक ये सब प्राण हैं। इनकी सेवा यहां अखंड रीतिसे चल रही है। यहां हमारी सहायक बुद्धि है। मन संपूर्ण इंद्रियों और अवयवोंका अधिष्ठाता है। इसलिये मैं मनको आज्ञा करता हूं कि वह शुभसंकल्प करता रहे। मैं नहीं चाहता कि इस मेरे राज्यमें अशुभवृत्ती धारण करनेवाला कोई हो। मैं नहीं चाहता कि इस मेरे राज्यमें अशुभ परिणाम करनेवाली कोई वस्तुका प्रवेश हो। यहां मेरे इस राज्यमें सब इंद्रियाँ शुभ प्रवृत्तिवाली हों, अन्न जल शुभ परिणाम करनेवाला इस शरीरमें जाय, मन शुभसंकल्प करे, यहां अशुभ कामनाका संपर्क ही न हो।

पापभाव और पाप वासना हमारे इस राज्यमें न आवे। कुविचार और कुसंकल्प हमारे पास न आवें। यहां शुभ भावनाओंका आनन्दपूर्ण वायुमण्डल रहे। मैं अपने धर्म भावनामय अनुशासनसे कुसंकल्पोंको यहां आने ही नहीं दूंगा। इस तरह यह यहांका राजा कह सकता है और यह जैसा कहता है वैसा ही यहां हो सकता है। अन्तःकरण शुभ विचारमय करना चाहिये। जिससे यहां आनन्दमय जीवन हो सकता है।

शुभ संकल्पवाला अपना मन बनानेसे इस शरीररूपी राष्ट्रमें रोग आदि आपत्तियाँ नहीं भोगनी पडेंगी। यहां सदा स्वास्थ्य रहेगा, आनन्द और सामर्थ्य यहां सदा रहेगा। अनुपम प्रसन्नता रहेगी।

शत्रुओंका आक्रमण

इस शरीररूपी राष्ट्रपर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर तथा अन्यान्य शत्रु आक्रमण करनेके लिये तैयार रहते हैं। जिस समय अनुशासनकी शिथिलता होती है, उसी समय ये शत्रु अन्दर घुसते हैं और यहां अपना अधिकार जमानेका यत्न करते हैं। यदि अनुशासन ढीला हुआ, तो सब शरीररूपी राष्ट्रपर ये अधिकार जमाते हैं और आत्मा बुद्धि मनको घेरते हैं और अनेक आपत्तियां निर्माण करते हैं। इसलिये यहां कदापि अनुशासनकी शिथिलता होने नहीं देना चाहिये। अनुशासन जितना जाग्रत और तीव्र होगा, उतना अधिक कल्याण यहां होगा, और अनुशासनकी शिथिलता होते ही अनेक विपत्तियां घेरेंगी और अनेक कष्ट भोगने पडेंगे।

यहां प्राणरूप स्वयंसेवक जन्मसे मृत्युतक जागते हुए रक्षणका कार्य उत्तम रीतिसे करते रहते हैं। इनके जाग्रत सुरक्षाके सुप्रबंधसे ही किसीमें प्रमाद होनेपर भी विपत्ति भोगनी नहीं पडती। इसलिये प्राणोंका महत्त्व विशेष है।

यह अपने राष्ट्रका स्वरूप है। हमें प्रयत्न इस विषयका करना चाहिये कि यहां हमारा ही अनुशासन चले और किसी अन्य शत्रुका अधिकार यहां न हो। संयम और निग्रहसे अपने इंन्द्रियों और अंगोंका नियमन करना चाहिये। ढिलाई यहां नहीं होने देना चाहिये। संयमकी आवश्यकता बतानेके लिये यहां कई प्रकारके उपदेशपरक वर्णन कहे हैं। उनमें प्रथम रथ और घोडेकी उपमासे कैसा सुंदर वर्णन है वह देखिये–

रथ, घोडे और सारथी

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धिः मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३॥
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ ४ ॥
कठ. ३

'यहां आत्मा रथी है, रथका स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और मन लगाम हैं। इन्द्रियाँ घोडे हैं, वे विषयोंमें संचार करते हैं। आत्मा-इंद्रिय-मन मिलकर भोक्ता कहलाता है।' यहां रथकी उपमा शरीरको देकर और इंद्रियोंको घोडे कहकर संयम कैसा करना चाहिये इसीका वर्णन किया है।

जिस तरह रथके घोडे सारथीके अधीन ही रहने चाहिये, सारथीके हाथमें लगाम रहने चाहिये, और सारथीने रथको उत्तम मार्गसे अपने इष्ट स्थान तक पहुंचाना चाहिये। इस तरह सब इंद्रियां, सब अंग और सब अवयव अपने स्वाधीन रहने चाहिये। किसी एकका भी स्वेच्छाचार हुआ तो वह सब शरीरके नाशके लिये कारण होगा। इसलिये यहां संयमका उपदेश अत्यंत महत्त्वका है।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

रथको जोते गये घोडे शिक्षित होने चाहिये। घोडे अच्छी तरहसे सुशिक्षित न रहे, तो वे सारथीके आधीन नहीं रहेंगे और रथको किसी गढेमें गिरा देंगे इसका पता नहीं लगेगा। सारथी अच्छी तरह चलानेकी कलामें कुशल न रहा, तो वह सुशिक्षित घोडोंको भी अच्छी तरह चला नहीं सकेगा और इधर उधर ले जाकर गिरा देगा। रथ सुदृढ न रहा तो बीचमें ही टूटेगा और रथी अपने पहुंचनेके स्थानपर नहीं पहुंच सकेगा। घोडोंकी लगामें उत्तम अवस्थामें न रहीं और बीचमें ही टूट गयीं, तो अच्छे घोडे भी ठीक तरह चलाये नहीं जा सकेंगे। मार्ग भी अच्छा सीधा चाहिये, गढोंवाला हो तो उसमें रथ, घोडे और सारथीके गिरनेकी संभावना होगी। इस तरह शरीरको रथकी, इंद्रियोंको घोडोंकी, बुद्धिको सारथीकी, मनको लगामोंकी उपमा देकर ये सब साधन ठीक चाहिये और स्वाधीन भी रहने चाहिये, ऐसा सूचित किया है वह बडा उपयोगी बोध है।

संयमका उपदेश

यहां शरीरधारी जीवको अपने मन बुद्धि चित्त अहंकार और इंद्रियोंका संयम करके उनको स्वाधीन रखनेका तो उपदेश है। मनःसंयम और इन्द्रियदमन यहां रहा तो ही ठीक है, नहीं तो असंयमसे बडी हानीकी संभावना है। यह उपदेश व्यक्तिके सुधारके लिये तो अत्यंत ही स्वीकार करने योग्य है। पर आत्माको स्वराट् और शरीरको आत्माका स्वराज्य कहकर यही शरीरके लिये किया हुआ उपदेश राष्ट्रमें ढालनेके लिये भी सूचित किया है। राष्ट्रके अधिकारी, राष्ट्र सभाके सभासद, तथा अन्यान्य कर्मचारी सबके सब सुशिक्षित, संयमी, अपने आपपर नियमन रखनेवाले, नीरोग, बलवान्, शत्रुको वश न होनेवाले चाहिये। यदि ऐसे न रहे तो राष्ट्रका राष्ट्र विनष्ट हो जायगा इसमें संदेह नहीं है। शरीरको राष्ट्र करके वर्णन करनेसे शरीरके वर्णनसे राष्ट्र शासनके लिये उत्तम बोध मिलता है और यही वैदिक शैलीकी विशेषता है।

राष्ट्ररूपी रथ

राष्ट्र एक रथ है, उसको अनेक अधिकारी जो शासनका कार्य करते हैं वे घोडे हैं, बुद्धि राजसभा है, मन महामंत्री अथवा मन्त्रीमंडल है, राष्ट्राधिकारी महामंत्रीके आधीन रहकर शासनका कार्य करते हैं, यहां सैनिक, आरक्षक तथा स्वयंसेवक प्राण हैं जो रातदिन राष्ट्रीय सुरक्षा करनेमें तत्पर रहते हैं। अन्य प्रजाजन राष्ट्रमें रहनेवाले हैं। उन सबको सुख आनंद और प्रसन्नताकी अवस्थातक पहुंचानेके लिये राष्ट्रशासन चलाया जा रहा है और इसका दायित्व राष्ट्राध्यक्षपर, राष्ट्रशासक पर है। इस अलंकारका मनन करनेसे राष्ट्रशासन विषयक कितना उत्तम बोध मिल सकता है उसका पाठक विचार करें। इस विचारके लिये निम्नस्थानमें लिखी तालिका बहुत उपयोगी हो सकती है-

शरीरमें	राष्ट्रमें
जीव, आत्मा	राष्ट्रमें जीवन फैलानेवाला अध्यक्ष
शरीरका अधिष्ठाता	राष्ट्राध्यक्षक, शासक, प्रजापति
बुद्धि, मति, मेधा, धारणा, चिंतनशक्ति	राष्ट्रशासकको सुसंमति देनेवाली राष्ट्रसभा।
मन, अहंकार	महामंत्री, राष्ट्राभिमान, मंत्रीमंडल
ज्ञान इंद्रियां	ज्ञान प्रसार करनेवाले शिक्षित लोग
कर्म इंद्रियां	कर्मकुशल कार्यकर्ता, शिल्पी,
प्राण, उपप्राण	रक्षक, आरक्षक, सैनिक, स्वयंसेवक,
इंद्रिय, अंग, अवयव	प्रांत, उपप्रांत और विभाग
शरीर (व्यक्ति)	राष्ट्र, देश (समूह)

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

इस तरह शरीरके नियम राष्ट्रमें डाले जाते हैं और उससे राष्ट्रीयशासनके विषयमें उत्तम बोध मिल सकता है। यह बोध यहां लेना चाहिये और हमारा राष्ट्रीयजीवन भी ऐसा उत्तम आदर्श मानने योग्य होना चाहिये।

राष्ट्रमें राष्ट्राध्यक्षसे लेकर प्रान्ताधिकारी, ग्रामाधिकारी ये सबके सब सुशिक्षित, कर्तव्य दक्ष, संयमी, अत्याचार न करनेवाले होने चाहिये। अपने नियत कार्यमें वे प्रवीण रहने चाहिये। महामंत्रीकी आज्ञामें रहकर राष्ट्रशासन तत्परतासे करनेवाले चाहिये। रक्षक सैनिक सबके सब रक्षणकर्म में प्रवीण चाहिये। शत्रुको वश होनेवाला यहां कोई नहीं चाहिये। शत्रुसे मिलनेवाला एक भी रहा तो वह राष्ट्रपर आपत्ति ला सकता है। और इस तरह आपत्ति आगयी तो उसका निवारण करना अत्यंत ही प्रयासका कार्य होता है। जैसा शरीरमें रोग लाना सहज हो सकता है, शरीरको नीरोग रखना ही कठिन है और उससे भी कठिन आये रोगको हटाना है। इसी तरह राष्ट्रको दक्षतासे सुरक्षित रखना अत्यंत प्रयाससे करनेपर ही होनेवाला कार्य है। शत्रुको बुलाकर लाना और उसके आधीन होकर अपना स्वातंत्र्य खोनेमें तो कोई कष्ट नहीं है। पर ऐसा पतन होनेपर जो सबको कष्ट होंगे वे महा भयंकर हैं। इसलिये सबको उचित है कि वे अपने राष्ट्रका संरक्षण करें, शत्रुके साथ कभी न मिलें और अपनी तथा अपने राष्ट्रकी सुरक्षामें ही अपनी सुरक्षा समझें।

व्यक्तिका शरीर व्यक्तिका अपना राष्ट्र है। ऐसा कहकर व्यक्तिके शरीरका वर्णन करनेसे वही राष्ट्रका वर्णन कैसा होता है और उसीसे कितना उत्तम राष्ट्रहितका बोध मिल सकता है वह हमने यहां देखा। अब वेदमें शरीरका और कैसा कैसा वर्णन किया है वह देखेंगे—

सप्त ऋषियोंका आश्रम

वेदमें शरीरके लिये अत्यंत पवित्र उपमा सप्त ऋषियोंके आश्रमकी दी है। वह अत्यंत बोधप्रद है वह अब देखिये-

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥
वा० य० ३४।५५

" प्रत्येक शरीररूपी आश्रममें सात ऋषि रहते हैं, वे प्रमाद न करते हुए इस यज्ञस्थानका संरक्षण करते हैं। यहां सात जलप्रवाह सोनेवालेके स्थानको वापस जाते हैं और इसी यज्ञस्थानमें दो देव विश्राम न करते हुए जागते रहते हैं। " यह इस शरीरका ही वर्णन है। इसके पूर्व शरीरको राष्ट्र मानकर तथा शरीरको रथ मानकर वर्णन किया है। अब यहां वेद मंत्र स्वयं शरीरको ऋषियोंका आश्रम मानकर वर्णन कर रहे हैं। राष्ट्रकी उपमा देकर वर्णन करनेमें यहां दक्षतासे संरक्षण होना चाहिये यह उपदेश मिला, रथ घोडे आदिके वर्णनसे इंद्रियोंकी स्वाधीनता तथा सुशिक्षाका उपदेश मिला है, अब ऋषि आश्रमके वर्णनसे पवित्रता तथा ज्ञाननिष्ठाका बोध मिल रहा है-

यहां इस शरीररूपी आश्रममें सात ऋषि बैठकर तपस्या कर रहे हैं। अर्थात् यह शरीर सप्त ऋषियोंका आश्रम है। यहां ये ऋषि अपनी अपनी कुटियामें रहते हैं और अपना ज्ञानसत्र चलाते रहते हैं। प्रत्येक शरीरमें (प्रति शरीरे सप्त ऋषयः हिताः) ये सात ऋषि हैं। सब मानवोंके शरीरोंमें है, प्रत्येक मनुष्यके शरीररूपी आश्रममें ये सात ऋषि हैं। इसी तरह पशुपक्षियोंके शरीरोंमें भी हैं। मनुष्य शरीरमें जैसे ये प्रौढ और कार्यक्षम हैं, वैसे पशु शरीरमें नहीं है। पर वहां भी ये हैं। सप्त ऋषियोंका निवास प्रत्येक शरीरमें है।

दो आंख, दो कान, दो नाक और एक जिह्वा ये सात ऋषि प्रत्येक शरीरमें हैं। 'ऋषि' वह है कि जो (ऋषयः क्रान्तदर्शिनः) क्रान्तदर्शी होता है, दूरका देखता है, दिव्यशक्तिसे दूरका देखता है आंख दूरका देखते हैं, कान दूरका सुनते हैं, नाक दूरसे गंध लेता है, जिह्वा शब्द बोलती है जो दूरसे सुनाई देता है। इस तरह ये ऋषि दूरदर्शी हैं, दूरसे ज्ञान लेते और ज्ञान देते हैं। ये ज्ञान प्रसारका कार्य करते रहते हैं। ज्ञान सत्र अथवा ज्ञानयज्ञ ही इन्होंने प्रारंभ किया है और अन्त तक ज्ञान क्षेत्रमें ही ये कार्य करते रहेंगे। अतः इनको ऋषि कहा है। ऋषि तो आश्रममें रहते हैं इसलिये इस शरीरको ऋषि आश्रम कहा गया है। ऋषि पवित्र रहते हैं और निर्दोष आचरण करते हैं, इसलिये इन इंद्रियोंको पवित्र रहकर निर्दोष आचरण करना चाहिये।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

(सप्त ऋषयः अप्रमादं सदं रक्षन्ति) ये सात ऋषि अपने आचारमें प्रमाद नहीं करते और इस यज्ञ सभागृहका उत्तम संरक्षण करते हैं। इसी तरह मनुष्यको प्रमाद न करते हुए अपने शरीरका और राजपुरुषोंको अपने राष्ट्रका प्रमाद न करते हुए उत्तम संरक्षण करना चाहिये। आंख दूरसे देखती है और कहती है कि दक्ष रहो शत्रु आरहा है। कान शब्द सुनता है, शब्दसे शत्रु मित्रको पहचानता है और कहता है, सावधान रहो शत्रु इस दिशासे आरहा है। नाक गंध सूंघता है और शत्रुको गंधसे ही पहचानता है और कहता है हां, इधरसे शत्रु आ रहा है। इस तरह ये ऋषि शत्रुको जानते हैं और संरक्षकोंको कहते हैं कि यह शत्रु है, इसे दूर करो।

ऐसा ही राष्ट्रमें करना चाहिये और राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिये। दूर दूरके स्थानों और देशोंमें क्या चला है यह जानकर वहां शत्रु कहां छिपे हैं ,उनका पता लेकर उनको दूर या विनष्ट करना चाहिये। रंग रूप शब्द हलचल आदिसे दूरके शत्रुओंको पहचानना और उनको दूर करना योग्य है। ऋषिके आश्रमोंपर राक्षस आक्रमण करते हैं और यज्ञका नाश करते हैं, इसका निवारण ऋषि करते हैं और आश्रमका संरक्षण करते हैं। यह कथा इस शरीरमें ही देखने योग्य है। ऋषियोंके आश्रमोंका विध्वंश तो राक्षस करते ही थे, राष्ट्रपर आक्रमण भी राक्षस ही करते रहते हैं, पर शरीररूपी आश्रमपर अथवा शरीररूपी राष्ट्रपर भी रोगादि बाह्य शत्रु और दुष्टविकार आदि अन्तः शत्रु आक्रमण करते हैं और इस शतसांवत्सरीक यज्ञका नाश करते हैं। पाठक यहां इन शत्रुओंका नाश करना है यह ध्यानमें रखें। हमारा शरीररूपी राष्ट्र जैसा उत्तम अवस्थामें रहना चाहिये वैसा ही हमारा विशाल राष्ट्र भी उज्ज्वल अवस्थामें प्रकाशता रहना चाहिये।

आश्रमकी सात नदियाँ

यहां शरीरका और वर्णन करते हैं। 'सप्त आपः स्वपतः लोकं ईयुः' सात जलप्रवाह, सात नदियां सोनेवालेके लोकको पहुंचती है। यहां सोनेवाला अन्तःकरणके साथ आत्मा है। उसका स्थान मनसे परे है। ये सात इंद्रिय प्रवाह आंखका दर्शनप्रवाह, कानका श्रवणप्रवाह, नाकका गन्धग्रहणप्रवाह, जिह्वाका रसग्रहणप्रवाह, त्वचाका स्पर्श ग्रहणप्रवाह जागृतिमें बाहरकी ओर चलता रहता है। इंद्रियाँ बाहरकी ओर देखती हैं अर्थात् उनके क्रियाप्रवाह अन्दरसे बाहरकी ओर जाते हैं। पर जब (स्वपतः लोकं ईयुः) वे प्रवाह सोनेवालेके स्थानको पहुंचते हैं, अर्थात् जब गाढ निद्रा आजाती है, जब निद्राकी स्थिति प्राप्त होती है, तब येही प्रवाह अन्तर्मुख हो जाते हैं। इन इन्द्रियोंके प्रवाह बाह्यविश्वकी ओर जानेका ही नाम "जाग्रती" है और इनके प्रवाह अन्तर्मुख होकर आत्माकी ओर जाने लगे और उसमें लीन हुए तो वही गाढ निद्रा होती है। इसलिये कहा है कि सप्त ऋषियोंके आश्रमकी ये सात नदियां जाग्रतिमें बाहरकी ओर जाती हैं और सुषुप्तिके समय वापस आकर आत्मामें लीन होती हैं।

जागनेवाले वीर

इस समय (तत्र जाग्रतः अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ) इस ऋषि आश्रममें दो देव जो कभी विश्राम नहीं करते, कभी निद्रा भी नहीं लेते और सतत आश्रममें ही जागते रहते हैं। आश्रमकी सुरक्षाके लिये सतत प्रयत्न करते रहते हैं। इनका नाम 'श्वास और उच्छ्वास' है। ये दो देव हैं जो इसके संरक्षणार्थ अविश्रांत परिश्रम करते रहते हैं। ये प्राण अवैतनिक स्वयंसेवक है।

कितना उत्तम शरीरका यह वर्णन है। यह शरीर सच मुच ऋषियोंका आश्रम बन जाय तो कितना अच्छा होगा। ऋषियोंकी ज्ञाननिष्ठा सुप्रसिद्ध है, वैसा ही आचारकी पवित्रता, धर्मनिष्ठा, ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करनेकी उत्सुकता आदि अनेक शुभ गुण ऋषि शब्दके साथ जुडे हैं। ज्ञानसे प्रशस्त कर्म करनेकी प्रवृत्ती उत्पन्न होती है, प्रशस्तकर्मोंसे इह परलोकका सुख निःसंदेह प्राप्त हो सकता है। इसका परिणाम दीर्घजीवनकी प्राप्ति और उत्साहपूर्ण व्यवहार होनेकी संभावनामें है। शरीरको सप्त ऋषियोंका आश्रम कहनेसे शरीरको अर्थात् शरीर, मन बुद्धिको अत्यंत पवित्र रखनेका दायित्व यहांके अधिष्ठातापर आता है। और उसको निभाना आवश्यक है। ये सप्त ऋषि यहांकी सुरक्षा प्रमादरहित होकर करते हैं। इसलिये हमें भी वैसा करना चाहिये। शरीरकी तथा राष्ट्रकी सुरक्षा दक्षतासे करनी चाहिये। किसी तरह उसमें न्यूनता नहीं होनी चाहिये।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

यहां दो देव जागते हैं, वे सोते नहीं, विश्राम नहीं करते, रातदिन खडा पहरा करते हैं। ये स्वयंसेवक हैं। राष्ट्रकी सुरक्षाका भार इनपर है। इस वर्णनसे व्यक्ति तथा राष्ट्रकी सुरक्षाके संबंधकी बहुतसी बातें समझमें आगयी हैं। जैसी व्यक्तिमें पवित्रता रखनी चाहिये वैसी ही राष्ट्रमें भी पवित्रता रखनी चाहिये।

दैवी रचना

जैसा शरीरमें राष्ट्र है, शरीर ऋषि आश्रम है, वैसी ही यह एक अलौकिक अथवा दैवी रचना भी है। इस संबंधमें ऐतरेय उपनिषद्में कहा है।—

अग्निः वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्,
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्,
आदित्यश्चक्षुः भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्,
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्
ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्
मृत्युः अपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्,
आपो रेतो भूत्वा शिस्नं प्राविशन् ॥ ४ ॥

ऐ० उ० १।२

" अग्नि वाणी बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण बनकर नासिकामें प्रविष्ट हुआ, सूर्य नेत्र बनकर आंखोंमें प्रविष्ट हुआ, दिशाएं श्रोत्रेन्द्रिय बनकर कानोंमें प्रविष्ट हो गयीं, ओषधि वनस्पतियां लोम बनकर त्वचामें प्रविष्ट हुईं, चन्द्रमा मन बनकर हृदयमें प्रविष्ट हुआ, मृत्यु अपान बनकर नाभिमें प्रविष्ट हुआ, जल वीर्य बनकर शिश्नमें प्रविष्ट हुआ। "

इस रीतिसे अन्यान्य देवताएँ शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें आकर रहीं हैं। संपूर्ण ३३ देवताओंका निवास इस शरीरमें है। इस तरह यह शरीर ' देवोंका मन्दिर ' है। इस समय तक शरीरको राष्ट्र कहा, शरीरको रथ कहा, शरीरको ऋषि आश्रम कहा, अब उसी शरीरको ' देवोंका मन्दिर ' कहते हैं। एक देवका मन्दिर नहीं परंतु ३३ देवोंका यह मन्दिर है, नहीं नहीं प्रत्युत ३३ कोटी देवोंका यह शरीर मंदिर है। इसलिये अथर्व वेदमें ' देवानां पूः ' (देवोंकी नगरी) कहा है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अथर्व० १०।२।३१

" आठ चक्रोंवाली तथा नौ द्वारोंवाली यह देवोंकी नगरी शत्रुद्वारा युद्ध करके पराजित न होनेवाली है। इस नगरीमें सुवर्णमय कोश है, जो तेजसे वेष्टित स्वर्ग है। " यह वर्णन इस शरीररूपी नगरीका है। यह अयोध्या नगरी है। यहां रामचन्द्रजी राज्य करते हैं। सच्चा रामराज्य यह शरीरका स्वराज्य है। इसके संरक्षण करनेके लिये इसके चारों ओर बडा भारी प्राकार है, यह एक बडा प्रचण्ड किला है, इस दुर्गके प्राकारको नौ द्वार हैं और इस दुर्गपर आठचक्र लगे हैं वहां शत्रुनाशके सब उलझट यंत्रादि सब साधन रखे हैं, जो योग्य समय पर शुरू होकर शत्रु का नाश करते हैं। यह ' अ-योध्या ' शत्रु द्वारा आक्रमण होने अयोग्य है। कितना भी बलवान शत्रु रहा, तो वह इस नगरीको पराजित करके इसको अपने आधीन नहीं कर सकता, ऐसी यह दुर्ग प्राकारोंवाली अभेद्य नगरी है। कोई शत्रु इसमें घुस नहीं सकता, ऐसी इसके संरक्षणकी योजना है। इस नगरीमें सर्वत्र (ज्योतिषा आवृतः) चारों ओर तेज ही तेज, प्रकाश ही प्रकाश है। अन्धेरेका नाम निशान नहीं है। इस नगरीमें (हिरण्ययः कोशः) सुवर्णका भरा हुआ कोश है। यह कोश धन रत्नोंसे भरपूर भरा है। धनकी कमी यहां नहीं है। यह देवोंकी नगरी है। स्वयं देव यहां आकर रहते हैं। ऊपर बताया है कि, सूर्यादि देव यहां आकर रहे हैं, अर्थात् सूर्यादि देवोंके अंश आकर यहां बसे हैं और एक एक प्रांतका अथवा एक एक विभागका वे आधिपत्य कर रहे हैं।

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

ये देव यहां कैसे किस मार्गसे आये यह उनका आनेका मार्ग बतानेवाला चित्र यहां बताया है। जो ब्रह्माण्डमें है वह सब अंशरूपसे इस शरीररूपी पिण्डमें है। विश्वमें ऐसा कोई शक्तिकेन्द्र नहीं, कि जिसका अंश इस शरीरमें आकर न रहा हो। अर्थात् जो विश्वमें है वह सब अंशरूपसे इस शरीरमें है और जो यहां है उसका बृहद्रूप विश्वमें है। मानो यह शरीर विश्वका एक अंशही है।

इस विषयका वर्णन वेद मंत्रोंमें इस तरह आता है-

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताजायत ॥८॥
ये त आसन्दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोकमासते ॥१०॥
शरीरं कृत्वा पादवत्कं लोकमनु प्राविशत् ॥११॥
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

Haridwar, Digitized by eGangotri

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे ॥ ३१ ॥
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवा गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥

अथर्व ११।८

" इन्द्र, सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता ये कहांसे हुए? देवोंसे जो पुत्ररूप देव बने वे दस देव थे, अपने पुत्ररूप देवोंको उन्होंने नया स्थान बनाकर दिया और वे पश्चात् किस लोकमें रहने लगे! चलनेवाला शरीर बनाकर वे देव भला कहां रहने लगे! संसिच् नामक वे देव हैं, जो सब संभार इकट्ठा करते हैं। उन्होंने इस मर्त्य शरीरको जीवनसे सिंचन किया और वे देव पुरुष शरीरमें घुस गये। रेतका घी करके देव मनुष्य शरीरमें घुसे हैं। सूर्य चक्षु बना, वायु प्राण बना, और ये देव पुरुषके शरीरमें अंग अंगमें विभक्त होकर रहने लगे हैं। इसलिये ज्ञानी मनुष्य " पुरुष-मनुष्यको 'यह ब्रह्म है' ऐसा कहता है।" सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान, इस मनुष्य शरीरमें रहती हैं।"

इन मंत्रोंमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि (गोष्ठे गावः इव सर्वाः देवताः अस्मिन् आसते) गोशालामें गौवें रहनेके समान सब देवताएं इस मानव शरीरमें रहती हैं। सब देवताएं रहती हैं, एक भी देवता ऐसी नहीं है, कि जो इस मनुष्य शरीरमें न रहती हो। यद्यपि इन मन्त्रोंमें ४।५ देवताओंके ही नाम दिये हैं, तथापि वह केवल उपलक्षण मात्र ही है। सब तैंतीस देवताएं तथा उनकी सहचारी गौण देवताएं भी अंश रूपसे इस शरीरमें आकर रहती हैं।

इस मन्त्रमें कहा है कि (पुत्रेभ्यः लोकं दत्वा) अपने निजपुत्रोंको इस शरीरमें (लोकं दत्वा) स्थान दिया और पिता रूप देव अपने अपने नियत स्थानमें रहने लगे हैं। बाहरके विश्वमें सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत, जल आदि तत्त्व बडे विशाल हैं, उनके अंश अर्थात् उनके पुत्र उत्पन्न हुए। इन पुत्रोंको स्थान करके देना पिताका कर्तव्य ही है। इसलिये (गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषं आविशन्) यह शरीर-- यह मरनेवाला शरीर-- निर्माण करके सब देव इसमें घुस गये हैं। गर्भाधान यज्ञमें मनुष्य के रेतरूपी घृतकी आहुती देकर, उसमेंसे देव इस मानव शरीरमें घुस गये हैं। ये मन्त्र शरीरमें देवोंका निवास होनेके विषयमें बडा विज्ञान दे रहे हैं।

इस शरीरको निर्माण करके देव उसमें घुसे हैं। इसका द्वार विदृति करते हैं। यह द्वार बालकका जन्म होनेपर भी खुलासा रहता है। इस द्वारसे देवताओंके सब अंश जो आत्माके साथ आये थे, वे शरीरमें प्रविष्ट हुए। यहांसे वे पृष्ठवंशमें गये। इस पृष्ठवंशके मज्जा केन्द्रोंमें- ये केन्द्र तैंतीस हैं- वे ३३ देवोंके अंश रहने लगे और वहांसे सब शरीरका संचालन वे करने लगे हैं। इनमेंसे केवल आठ ही केन्द्र योग साधनमें लिये हैं। जिसका वर्णन 'अष्टाचक्रा' करके इसके पूर्वके स्थानमें दिये मंत्रमें आगया है।
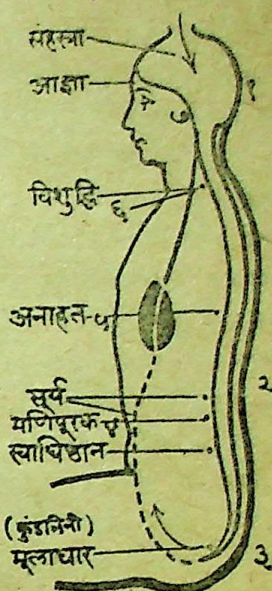
वास्तविक तैंतीस मज्जातन्तुओंके केन्द्र इस पृष्ठवंशमें हैं, उनमेंसे मुख्य आठ योगियोंने लिये हैं। इस तरह प्रत्येक शरीरके अंग, इंद्रिय और अवयवमें देवता रहते हैं।

बीज और वृक्ष

पितादेवसे पुत्रदेव उत्पन्न हुए हैं। यहां पितारूप देवोंने पुत्ररूप देव उत्पन्न किये और उनको शरीरके अंग प्रत्यंगोंमें रहनेके लिये स्थान दिया और पितादेव अपने स्थानमें

CCO, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

वापस चले गये। ऐसा कहा है। उसका भाव यह है कि जैसे वृक्षके सब अवयवोंके अंश बीजमें उतरते हैं, जैसे पिताके शरीरके सब अवयवोंके अंश उसके वीर्यकणमें उतरते हैं, उसी तरह परमात्माका यह विश्वरूप देह है, उससे निकले जगद्बीजमें, परमात्माके शरीरमें अर्थात् संपूर्ण विश्वमें रहनेवाले सब पदार्थोंके अंश आकर रहे हैं। परब्रह्मका अंश जीव, सूर्यका अंश नेत्र, वायुका अंश प्राण, जलका अंश रसना; पृथ्वीका अंश नासिका आदि प्रकार विश्वधारक सब देवताओंके अंश एकत्रित होकर यह शरीर बना है। यह शरीर तो देवतामय है, एक एक, अणुमें देवताओंके अंश हैं। शरीरका कोई अंश ऐसा नहीं है कि, जहां देवताओंका वास्तव्य न होता हो। प्रत्येक शरीरका प्रत्येक विभाग देवताके अंशसे बना है। अर्थात् जैसे विश्वमें तैंतीस करोड देवताएं हैं, उसी तरह इस शरीरमें भी तैंतीस करोड देवताओंके अंश आकर रहते हैं।

शरीरके प्रत्येक विभागमें जो अधिष्ठाता रहता है उसके आधीन ये वहांकी सब देवताएँ हैं। और इसपर मनका अधिकार है। मन देवोंका राजा है। इन्द्रियोंका अधिपति मन है। यहां जो प्राण हैं वे महारुद्र हैं, रक्षण और संहार का कार्य इनके आधीन है।

शरीरमें कोई स्थान ऐसा नहीं है कि जहां देवताओंका निवास नहीं है। सब शरीर देवतामय है। इसलिये इसको 'देवानां पूः' देवताओंकी नगरी कहा है। श्री कृष्णकी द्वारावती अथवा 'द्वारका' जिसको (नव-द्वारा) नौ द्वार हैं, यही शरीर है। और श्रीरामचन्द्रकी अयोध्या यही है। पूर्वोक्त एक ही मंत्रमें 'नवद्वारा' और 'अयोध्या' ये पद इसीका दर्शन करा रहे हैं।

देवताओंसे लाभ

विश्वमें सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युत् अग्नि आदि विश्वव्यापक देवताएं हैं। उनके अंश नेत्र, मन, प्राण आदि इस शरीरमें रहते हैं। शरीरमें जो अंश रहते हैं, वे बाह्य बृहद्देवताओंके अंश होनेके कारण, अथवा उनका पिता पुत्र जैसा संबंध होनेके कारण, इस संबंधसे हम बडा लाभ उठा सकते हैं।

देखिये सूर्यका अंश नेत्र है, इसलिये नेत्रका आरोग्य सूर्यके किरणोंसे बढ सकता है, प्राणकी शक्ति बाह्य वायुके संबंधसे बढती है, इस तरह बाह्य विश्वकी सब देवताएं इस शरीरके अन्दर रहनेवाले अपने अंशरूप पुत्रोंकी पालना कर रहे हैं। इसका अनुभव अपने दैनिक व्यवहारमें भी ले सकते हैं। विश्वमें अन्न, धान्य, फल, साग आदि उत्पन्न होता है, उसका सेवन करनेसे मनुष्यका शरीर हृष्टपुष्ट हो जाता है। विश्वमें जल है, इस जलका पान करनेसे मनुष्यकी तृषा शमन हो जाती है, बाह्य विश्वमें प्रकाश है उसकी सहायतासे हमारे नेत्र देखते हैं। इस तरह दिन रात हमारा संचार विश्वकी देवताओंके अन्दर हो रहा है, हमारे आगे पीछे, ऊपर नीचे, हमारे चारों ओर विश्वकी सब देवताएं ही देवताएं है और प्रतिक्षण हम उन देवताओंमें उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते हैं और प्रत्येक क्षण हमारे इंद्रिय और अवयव उनसे शक्ति प्राप्त करते रहते हैं। यह व्यक्तिका विश्वसे संबंध है।

शक्ति प्राप्त करनेका अनुष्ठान

हमारे शरीरके अन्दरके देवतांश अल्प शक्तिवाले हैं। विश्वकी अन्दरकी देवताएं बडी विशाल और महाशक्तिवाली हैं। हमारे शरीरकी देवता विश्वकी देवताके साथ मिलती और उससे शक्ति प्राप्त करती हैं। यदि हमारा संबंध बाह्य विश्वके साथ न हुआ, तो व्यक्तिके जीवित रहनेकी भी संभावना नहीं है। बाह्य जलवायुसे हमारा संबंध स्थायी रूपसे टूट जानेपर हम कुछ क्षण भर भी जीवित नहीं रहेंगे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, बाह्य विश्वकी देवताओंके साथ रहनेसे ही हमारा जीवन रहता है। परमात्माके विश्वशरीरसे जीवात्माके छोटे शरीरका संबंध है। वह पिता है, हम उसके अमृत पुत्र हैं। यह संबंध सदा ध्यानमें रखनेयोग्य है। हमारे शरीरके अन्दरके देवतांशोंसे विश्वव्यापक विशाल देवताओंका अनन्य संबंध है। उससे हम पृथक् नहीं हैं। एकरूप हैं। परमात्माका आंख सूर्य है, उस सूर्यका अंश हमारा आंख है। इसी तरह हमारे संपूर्ण इंद्रियों अंगों और अवयवोंके साथ परमात्माके विश्व शरीर का अटूट तथा अनन्य संबंध है।

अब हम अपने इन्द्रियोंसे विश्वशरीरकी उन महाशक्तियोंका संबंध विशेष घनीभूत कर सकते हैं। ऐसा

Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

संबंध बढानेका कार्य हमने शुरू किया तो उससे हमारे अन्दर शक्तिका संवर्धन होगा और हमारे इंद्रियकी शक्तिका हम विकास कर सकेंगे। हमारे इन्द्रिय इस तरह विशेष प्रभाव भी उत्पन्न कर सकते हैं।

यह योग है। वैयक्तिक शक्तिका विश्वशक्तिसे योग होता है और इससे विश्वकी महाशक्ति व्यक्तिमें थोडी थोडी उतरती है। अपना विश्वसे अटूट संबंध इस तरह जोडा जा सकता है। इसी तरह विश्वकी महाशक्तिसे अपना योग करना चाहिये।

मैं कौन हूं ?

मैं देवोंका राजा हूं, सब देव इस शरीरमें रहनेवाले मेरे प्रजाजन हैं। इनपर मैं शासन कर रहा हूं। यह शरीर देवोंकी सभा है, इन्द्र रुद्र मरुत् आदि सब देव इस सभामें विराजमान हैं। ये सब इस शरीरमें कार्य कर रहे हैं। मैं आत्मा इन सबका शासक हूँ। मेरा अनुशासन इनपर चलना है। देवसभाका अध्यक्ष होनेका भाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। यह कितना बडा अधिकार है? यह शरीर हीनदीन या तुच्छ नहीं है। अनंत शक्तियाँ यहां बीजरूपसे हैं, उनका समविकास करना मेरा कर्तव्य है। यह कार्य मैं करूंगा।

वैदिक धर्मने इस शरीरको रथकी और इंद्रियोंको घोडों की उपमा देकर कहा कि इंद्रियोंका संयम करना चाहिये और इंद्रियोंमें सुशिक्षा द्वारा कर्मकी कुशलता प्राप्त करनी चाहिये। इसी तरह शरीरको राष्ट्र कहकर उसका यथा योग्य शासन करनेका दायित्व मनुष्य पर रख दिया। इसके अनंतर शरीरको ऋषि आश्रम कह कर यहां पवित्रता और ज्ञानदृष्टीका अत्यंत महत्त्व है यह बताया। अब यहां प्रत्यक्ष देवोंका निवास है ऐसा कहकर, इस शरीरको देवोंका राष्ट्र बताकर, इसमें नाना प्रकारकी शक्तियोंका निवास है यह स्पष्ट कर दिया है और इन शक्तियोंका विकास करनेकी युक्ति भी बता दी है। इस सब वर्णनसे स्पष्ट हुआ है कि यह शरीर अनन्त शक्तियोंका बीज है, जो विकासको प्राप्त करके विकसित हो सकता है।

वृक्ष और बीजमें देखिये वृक्षमें जितनी शक्तियाँ होती हैं उनका बीजमें अविकसित रूपमें सद्भाव होता है। वृक्षका मूल, धड, शाखा, टहनियां, पत्ते, फूल फल आदि सबका सब बीजमें सूक्ष्म अंश रहता है और विकसित होकर वही बीज वृक्षाकार बनता है। बीजमें वृक्षही सूक्ष्म रूपसे है और वृक्ष बीजका ही विस्तार है। इसी तरह मनुष्य शरीर और उसका वीर्यबिन्दुका संबंध है। वीर्य बिंदुसे शरीर बनता है और शरीर फिर बिंदु बन जाता है। इसी तरह परमपिताका और इस अमृत पुत्रका संबंध है।

मधुकर राजा और मधुमक्षिकाएं

ब्रह्मका अंश और तैंतीस देवताओंके तैंतीस अंश मधुमक्षिका और मधुमक्खियोंका राजा जैसे रहते हैं। मधु मक्खियोंका राजा जहां जाता है, वहां अन्य मक्खियां जाती हैं। वैसा ही ब्रह्मका अंश जहां रहता है वहां तैंतीस देवोंके अंश रहते हैं। तैंतीस देवताओंके तैंतीस अंश और उनका अधिष्ठाता आत्मा इस शरीरमें आकर सौ वर्ष चलने वाला यज्ञ करें, यह जीव अपने लिये यज्ञभूमि कौनसी अच्छी है, इसका निरीक्षण करता है और किसीके योग्यगर्भमें आता है। गर्भमें ये सब ३४ शक्तियां जातीं हैं और उस गर्भके शरीरमें रहती है। यह बालकका स्वरूप है। यही जानना चाहिये। वैदिक कल्पना बालकके विषयमें यह है। यह कितनी उत्तम है इसका विचार पाठक करें। किसीके घरमें जब बालक उत्पन्न होता है वह इतनी शक्तियोंके समेत उत्पन्न होता है। यह इस शरीररूपी यज्ञभूमिमें रहकर सौवर्ष चलानेवाला सत्र करनेके लिये जन्मता है। इसलिये सौवर्ष जीवित रहकर अपना जीवन यज्ञीय बनाना प्रत्येक मनुष्यके लिये योग्य है।

वैदिक धर्ममें मनुष्यके शरीरकी ऐसी उच्च कल्पना है। इसके विपरीत बुद्धधर्मने शरीरको 'पीप-विष्टा-मूतका गोला,' 'पिंजरा,' 'जेलखाना' आदि बताकर शरीरके विषयमें हीनतम कल्पना फैला दी है और अपने शरीरके विषयमें घृणा उत्पन्न की है। वह सब अयोग्य कल्पना है, हानिकारक है, अतः त्याज्य है।

पाठक वैदिक कल्पनाका स्वीकार करें और उससे अपनी उन्नति करके स्वराज्यका आनन्द प्राप्त करें। वैदिक स्वराज्य शासनके लिये भी ऐसे ही अपने शरीरका स्वराज्य जाननेवाले उत्तम पुरुष चाहिये। इनसे ही वैदिक स्वराज्य शासन सिद्ध हो सकेगा, जो मनुष्योंका आनन्द निःसंदेह बढानेवाला होगा।

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर देनेका यत्न कीजिये—

१ राष्ट्रपर कौन अधिकार कर सकता है ?

२ बलका महत्त्व कितना है ?

३ सम्राट् और उसके अधिकारी शरीरमें और राष्ट्रमें बताइये।

४ कितने प्रजाजन हैं और वे कितने प्रांतोंमें रहते हैं ?

५ वैतनिक सेवक कौन हैं और अवैतनिक स्वयंसेवक कौनसे हैं ? उनका वर्णन करो।

६ भोगी अधिकारी होनेसे क्या होता है ? क्या स्वयं-सेवक भोग नहीं भोगते ? वे कहां रहते और क्या करते हैं ?

७ वैतनिक सेवकों और अवैतनिक स्वयंसेवकोंका झगडा क्यों हुआ ? अन्तमें निर्णय क्या हुआ ? कौन जीत गया ?

८ इस राष्ट्रमें कितने प्रांत हैं और उनके नाम कौनसे हैं, उनके अधिकारियोंके नाम कहो।

९ प्राण और मनका संबंध क्या है ? मनको शुभ संकल्प-वाला क्यों करना चाहिये ? मनकी शक्ति कितनी है ? मनके संकल्पविकल्पका परिणाम शरीरपर कैसा होता है ?

१० शत्रुओंका आक्रमण इस राष्ट्रपर किस तरह होता है? कौनसे शत्रु हैं ? वे कैसे आक्रमण करते हैं ?

११ रथ, घोडे, सारथी, और लगाम कहां और कौन है, वे क्या कार्य करते हैं ? इससे संयमका उपदेश मिलता है वह किस तरह ? राष्ट्ररूपी रथका वर्णन करो। इसके घोडे सारथी आदि कौन हैं ?

१२ शरीरकी राष्ट्रके साथ तुलना करो।

१३ सप्त ऋषियोंका आश्रम कहां है ? सात ऋषि यहां कौन हैं, वे क्या करते हैं ? इस उपमाने कौनसा बोध दिया है ?

१४ आश्रमकी सात नदियां कैसी बहती हैं इसका वर्णन करो। यहां रक्षक वीर कौन हैं ? वे कितने हैं ?

१५ यहां दैवी रचना कैसी हुई है ? कौन देव कहां रहे हैं? अयोध्या और द्वारोंवाली नगरी कौनसी है ? वह कैसी है ? कौन रक्षक वहां है ?

१६ यहां देव किस द्वारसे आते हैं ? कहां रहते हैं, वहां वे क्या कार्य करते हैं ?

१७ पृष्ठवंश और अष्टचक्रोंके स्थान बताओ और इनके महत्त्वका वर्णन करो।

१८ इन देवताओंसे मनुष्य किस तरह लाभ प्राप्त कर सकता है ? अनुष्ठानकी विधि बताओ ? लाभ प्राप्त करनेका मार्ग बताओ।

१९ मैं कौन हूं ? मेरी शक्ति क्या है ?

२० मक्खियोंका राजा कौन है और मधुमक्खियां कौनसी हैं ? इससे क्या बताया है ?

२१ अपना स्वराज्य कौनसा है ? इस ज्ञानसे राज्यशासन किस तरह सिद्ध होता है उसका वर्णन करो।
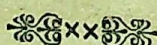
उपनिषदोंको पढिये

१ ईश उपनिषद्	मूल्य २)	डा. व्य. ॥)
२ केन उपनिषद्	,, १॥)	,, ॥)
३ कठ उपनिषद्	,, १॥)	,, ॥)
४ प्रश्न उपनिषद्	,, १॥)	,, ॥)

मंत्री - स्वाध्यायमण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (सूरत)

CC0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

व्यवहार और परमार्थसाधक वेद

वेद जैसा व्यवहारके साधन करनेका उत्तम मार्ग बताता है वैसा ही परमार्थके साधनका भी उत्तम मार्ग बताता है। इसको जनताके सामने रखनेका कार्य वैदिक-व्याख्यान-मालासे किया जा रहा है। यदि पाठक इन व्याख्यानोंको पढेंगे तो उनको पता लग जायगा कि एक एक वेदका पद और वाक्य उत्तम व्यवहार उत्तम रीतिसे किस तरह करना चाहिये, इसका बोध देता है और वही परमार्थका साधन किस तरह करना चाहिये यह भी दर्शाता है। इसलिये ये व्याख्यान केवल पढकर ही छोडनेके लिये नहीं हैं, परंतु इसका प्रत्येक वाक्य अभ्यास करने और वारंवार मनन करने योग्य है। इस समय ये व्याख्यान तैयार हैं—

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।

२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।

३ अपना स्वराज्य।

प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने और पैकिंग समेत डा० व्य० =) दो आने है। प्रत्येकके लिये आठ आने भेजनेसे ये मिल सकते हैं। आगेके व्याख्यान छप रहे हैं—

४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।

५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।

इस तरह अनेक विषयोंपर ये व्याख्यान होंगे। इन विषयोंका मनन और प्रचार जगत्में होना चाहिये। समाजकी रचना इन सिद्धान्तोंपर होनी चाहिये। तब आज कलकी अनेक समस्याएँ और कठिनताएँ दूर हो सकती हैं और लोगोंको अपूर्व शांति मिल सकती है।

परमार्थ साधनके लिये विश्व छोडनेकी आवश्यकता नहीं है, प्रत्युत विश्वकी सेवा करते हुए ही परमार्थ साधन हो सकता है यह वेदका आदेश है।

पाठक इन व्याख्यानोंका उत्तम अध्ययन, मनन और उत्तम अनुष्ठान करें, इसलिये इन व्याख्यानोंके अन्तमें प्रश्न भी दिये हैं। इन प्रश्नोंका उत्तर जो दे सकते हैं उनका व्याख्यानका मनन ठीक हुआ ऐसा समझ सकते हैं।

विना प्रयत्न किये ही वैदिक धर्म आचरणमें नहीं आ सकेगा, वह केवल शब्दोंमें ही रहेगा, केवल शब्दोंमें रहा धर्म उत्तम सुख नहीं देता। वैदिक धर्मसे व्यक्ति और समाज एवं राष्ट्र व्यवस्थाका सुधार हो जाय, इसलिये हरएकको बडा प्रयत्न करना चाहिये।

ऐसा प्रयत्न करनेवाले हों तो प्रचारार्थ उनकी सहायता चाहिये।

निवेदनकर्ता

श्री. दा. सातवलेकर,
अध्यक्ष—स्वाध्याय-मंडल

आनन्दाश्रम
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

CC0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri

श्रीमद्भगवद्गीता ।

इस 'पुरुषार्थ-बोधिनी' भाषा-टीकामें यह बात दर्शायी गई है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राची ग्रन्थोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं। अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस 'पुरुषार्थ बोधिनी' टीकाका मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है।

'गीता के १८ अध्याय तीन विभागोंमें विभजित किये हैं और उनकी एकही जिल्द बनाई है मू० १०) रु० डाक व्ययं १॥)

भगवद्गीता-समन्वय ।

यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन करनेवालोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है। 'वैदिक धर्म' आकारके १३५ पृष्ठ, चिकना कागज । सजिल्दका मू० २) रु०, डा० व्य० ।=)

भगवद्गीता--श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीमद् गीताके श्लोकार्धोंकी अकरादिक्रमसे **आद्याक्षरसूची** है और उसी क्रमसे **अन्त्याक्षरसूची** भी है। मूल्य केवल ।॥), डा० व्य० =)

सामवेद कौथुमशाखीयः

ग्रामगेय [वेय प्रकृति] गानात्मकः

प्रथमः तथा द्वितीयो भागः।

(१) इसके प्रारंभमें संस्कृत-भूमिका है और पश्चात् '**प्रकृतिगान**' तथा '**आरण्यकगान**' है। **प्रकृतिगानमें अग्निपर्व** (१८१ गान) **ऐन्द्रपर्व** (६३३ गान) तथा '**पवमानपर्व**' (३८४ गान) ये तीन पर्व और कुल ११९८ गान हैं। आरण्यकगानमें **अर्कपर्व** (८९ गान), **द्वन्द्वपर्व** (७७ गान) **शुक्रियपर्व** ८४ गान) आर **वाचोव्रतपर्व** (४० गान) ये चार पर्व और कुल २९० गान हैं।

इसमें पृष्ठके प्रारंभमें ऋग्वेद-मन्त्र है और सामवेदका मन्त्र है और पश्चात् गान हैं। इसके पृष्ठ ४३४ और मूल्य ६) रु० तथा डा० व्य० ॥।) रु० है।

(२) उपर्युक्त पुस्तक केवल '**गानमात्र**' छपा है। उसके पृष्ठ २८४ और मू० ४)रु. तथा डा०व्य०॥)रु. है।

आसन ।

" योगकी आरोग्यवर्धक व्यायाम-पद्धति "

अनेक वर्षोंके अनुभवसे यह बात निश्चित हो चुकी है कि शरीरस्वास्थ्यके लिये आसनोंका आरोग्यवर्धक व्यायामही अत्यन्त सुगम और निश्चित उपाय है। अशक्त मनुष्य भी इससे अपना स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धतिका सम्पूर्ण स्पष्टीकरण इस पुस्तकमें है। मूल्य केवल २॥) दो रु० आठ आने और डा० व्य० ॥) आठ आना है। म० आ० से २॥।≥) रु० भेज दें।

आसनोंका चित्रपट— २०"×२७" इंच मू० ।) रु., डा० व्य० -)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. स

CC-0. ... Collection, Haridwar, Digitized by eGangotri